

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 7: इन्द्र और बृहस्पति

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने वैभवशाली सिंहासन पर विराजमान और शक्ति के मद में चूर इन्द्र अपने ही आचार्य बृहस्पति के आने पर उठकर सम्मान नहीं देते — और सम्मान की यही एक चूक स्वर्ग के राजा को गिरा देती है, यह सिखाते हुए कि कोई भी सम्पत्ति या पद आध्यात्मिक गुरु के प्रति अभिमान को क्षम्य नहीं बनाता।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

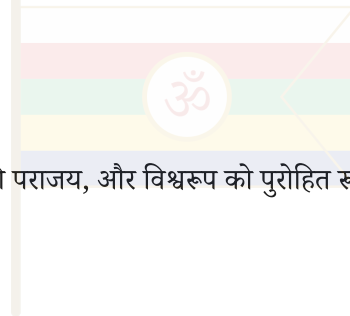
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विजडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। षष्ठ स्कन्ध का सातवाँ अध्याय बताता है कि किस प्रकार स्वयं स्वर्ग के राजा अभिमान के एक ही कृत्य से पतित हुए। अतुलनीय वैभव में सिंहासनारूढ़ इन्द्र देवों के आचार्य बृहस्पति के सम्मान में उठे नहीं; बुद्धिमान् ऋषि मौन होकर लौट गए, और स्वर्ग आध्यात्मिक मार्गदर्शन से रहित हो गया। तत्काल शुक्राचार्य से सम्मति पाकर असुरों ने देवों पर आक्रमण किया और उन्हें पराजित कर दिया, और हारे हुए देव ब्रह्मा की शरण में गए। सृष्टिकर्ता द्वारा कोमलता से भर्त्सना और बुद्धिमानी से परामर्श पाकर, उन्होंने त्वष्टा के तपस्वी पुत्र विश्वरूप को खोजा, और गुरुजनों तथा आचार्यों के प्रति देय सम्मान की एक सुन्दर शिक्षा के द्वारा उन्हें अपना पुरोहित बनाया। भगवान् विष्णु को अर्पित अपने स्तोत्र — नारायण-कवच, जो अगले अध्याय में दिया जाएगा — के द्वारा विश्वरूप ने इन्द्र को उनका खोया वैभव लौटा दिया।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 7 (सप्तम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: इन्द्र द्वारा अपने आचार्य बृहस्पति का अपमान
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव, राजा परीक्षित को सुनाते हुए; तथा कथा के भीतर ब्रह्मा, देवगण और विश्वरूप
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; और बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: स्वर्ग में इन्द्र की सभा; ब्रह्मा का धाम; और विश्वरूप का आश्रम
- केन्द्रीय विषय: इन्द्र का अपने आचार्य के प्रति अपराध, उससे उत्पन्न देवों की पराजय, और विश्वरूप को पुरोहित रूप में स्वीकार करना
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 7, श्लोक 1–40
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



राजा परीक्षित का प्रश्न

राजा परीक्षित एक गहन जिज्ञासा से अध्याय का आरम्भ करते हैं — आखिर वह कौन-सा अपराध था, जिसके कारण स्वयं उनके आचार्य ने देवताओं को त्याग दिया? वे शुकदेव से शिष्यों की उस चूक को स्पष्ट करने का अनुरोध करते हैं, जिसने सम्पूर्ण घटनाक्रम को जन्म दिया (श्लोक 1)।

श्रीराजोवाच

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ।

एतदाचक्ष्व भगवज्छिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥

śrī-rājovāca kasya hetoḥ parityaktā ācāryeṇātmanaḥ surāḥ etad ācakṣva bhagavañ chiṣyāṇām akramaṁ gurau

अर्थ: राजा परीक्षित ने कहा: किस कारण से देवगण अपने ही आचार्य द्वारा त्याग दिए गए? हे भगवन्, मुझे शिष्यों का गुरु के प्रति यह अपराध समझाइए। (स्कन्ध 6, अध्याय 7, श्लोक 1)

इन्द्र का अभिमान

श्रीशुकदेव उत्तर देते हैं कि इन्द्र, लोकों के आधिपत्य से अभिमानी होकर, एक दिन पूर्ण वैभव में अपने सिंहासन पर विराजमान थे — मरुद्गण, वसु, रुद्र, आदित्य और अनेक दिव्य प्राणियों से घिरे, सिद्धों, गन्धर्वों और ऋषियों द्वारा सेवित और स्तुत, श्वेत राजछत्र से आच्छादित और चँवरों से सेवित, अपनी रानी शची के साथ चमकते वैभव में बैठे (श्लोक 2-6)। इस सभा में बृहस्पति आए, ऋषियों में श्रेष्ठ, देवों और असुरों दोनों द्वारा पूजित आचार्य। किन्तु अभिमान से अन्धे इन्द्र उठे नहीं, आसन नहीं दिया, ऋषि को अपने समक्ष उपस्थित देखकर भी हिले नहीं। धन और शक्ति के मद से उत्पन्न इस विचलन को समझकर, अंगिरा-पुत्र प्रबुद्ध ऋषि मौन होकर मुड़े और अपने घर लौट गए, यद्यपि वे अपने भटके शिष्य को दण्डित करने में पूर्ण समर्थ थे (श्लोक 7-9)।



अभिमानी इन्द्र द्वारा भरी सभा में अपमानित होकर, आचार्य बृहस्पति मौन होकर मुड़ते और लौट जाते हैं, स्वर्ग को उसके आध्यात्मिक मार्गदर्शक से रहित छोड़कर (श्लोक 7-9)।

पश्चात्ताप और अन्तर्धान आचार्य

जिस क्षण बृहस्पति गए, इन्द्र ने अपना दोष पहचान लिया और भरी सभा में अपने को धिक्कारा। कितना निन्दनीय, उन्होंने स्वीकार किया, कि तुच्छ बुद्धि वाला, शक्ति के मद में उन्मत्त प्राणी अपने ही गुरु का अपमान करे। कौन बुद्धिमान् स्वर्ग के वैभव की भी कामना करेगा, उन्होंने विलाप किया, यदि वह अपने धारक को अहंकार में घसीट ले (श्लोक 10-12)?

इन्द्र के पश्चात्ताप ने एक गहरी शिक्षा को खोल दिया। जो यह मान बैठे कि अपने वैभव के सिंहासन पर बैठा राजा किसी के लिए — किसी ब्राह्मण या किसी अन्य नरेश के लिए भी — उठने को बाध्य नहीं, वह धर्म की गहरी मर्यादा को नहीं समझा, क्योंकि सच्चा अधिकार भी ज्ञान और पवित्रता के आगे झुकता है (श्लोक 13)। ऐसा उपदेश पत्थर की बनी नाव से बढ़कर कुछ नहीं: जो इसे देता है, और जो इस पर विश्वास

करके चढ़ते हैं, वे सब उन्हीं जलों में डूब जाते हैं जिन्हें पार कराने का वचन दिया गया था — क्योंकि पार लगाने वाली वस्तु वह सिंहासन नहीं जहाँ से बात कही जाए, अपितु वह सत्य है जो कहा जाए (श्लोक 14)।

ऋषि के चरणों में सिर रखकर क्षमा माँगने का संकल्प करके, इन्द्र देवों के आचार्य को प्रसन्न करने चल पड़े (श्लोक 15)। किन्तु बृहस्पति, इन्द्र के मन और भविष्य को जानकर, अपनी योगशक्ति से पहले ही अपने घर से अन्तर्धान हो चुके थे। कितना ही खोजने पर भी इन्द्र को उनका कोई सुराग न मिला, और देवों से घिरे होकर भी उन्हें शान्ति न मिली (श्लोक 16-17)।

देवों की पराजय

इन्द्र की असहायता सुनकर, असुरों ने शुक्राचार्य की सम्मति से शस्त्र उठाए और देवों पर चढ़ाई कर दी। तीखे बाणों से बिंधे अंगों सहित, इन्द्र के नेतृत्व में देवगण पराजित हुए, और लज्जा से सिर झुकाए ब्रह्मा की शरण में गए (श्लोक 18-19)। उन्हें चारों ओर से पीड़ित देखकर, करुणामय स्वयम्भू ब्रह्मा ने उन्हें सान्त्वना के शब्द कहे (श्लोक 20)।



आचार्य के अभाव में असुरों से पराजित होकर, इन्द्र के नेतृत्व में देवगण सिर झुकाए करुणामय ब्रह्मा की शरण में आते हैं (श्लोक 19-20)।

ब्रह्मा का परामर्श

ब्रह्मा ने उन्हें सत्य से नहीं बचाया। तुम्हारा आचरण, उन्होंने कहा, अत्यन्त अवांछनीय रहा है: शक्ति के मद में तुमने उस ब्राह्मण का सम्मान नहीं किया जिसने स्वयं को अनुशासित कर लिया था और ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया था। इसी दुराचरण का फल था कि तुम, धनी और बलवान् होकर भी, अपने से कहीं दुर्बल शत्रुओं से पराजित हुए (श्लोक 21-22)।

यहाँ ब्रह्मा इस घटना का असली कारण प्रकट करते हैं। असुर अपने बल से महान् नहीं बने थे; बार-बार देवों ने उन्हें सहज ही परास्त किया था। उनका अकस्मात् बल, ब्रह्मा ने समझाया, केवल अपने आचार्य शुक्राचार्य को सर्वांगपूर्ण भक्ति से प्रसन्न करने से आया — इतनी भक्ति से कि वे एक दिन मेरे ही धाम की कामना कर सकते हैं — ठीक वैसे ही जैसे देवों की अकस्मात् दुर्बलता केवल अपने ही आचार्य के अनादर से आई। इस

संसार में बल कभी स्वतः उत्पन्न नहीं होता, ब्रह्मा ने सिखाया: यह उसी की ओर बहता है जो ब्राह्मण, गौ और भगवान् का सम्मान करता है, और जिस क्षण वह सम्मान रोक दिया जाए, चाहे अपनी सम्पत्ति और वैभव का भण्डार कितना ही विशाल क्यों न हो, वह बल बह जाता है (श्लोक 22-24)।

इसलिए, उन्होंने आदेश दिया, तत्काल त्वष्टा के तपस्वी और आत्मसंयमी पुत्र विश्वरूप की शरण लो; वे तुम्हारा सच्चा प्रयोजन पूर्ण करेंगे — किन्तु केवल तभी जब तुम उनके स्वभाव को सह सको (श्लोक 25)।

तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं
तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ।
सभाजितोऽर्थान् स विधास्यते वो
यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २५ ॥

tad viśvarūpaṁ bhajatāśu vipraṁ tapasvinam tvāṣṭram athātmavantam sabhājito 'rthān sa vidhāsyate vo yadi kṣamiṣyadhvam utāsy karma

अर्थ: इसलिए, तत्काल त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की शरण लो, जो तपस्या और आत्मसंयम में निष्ठ एक ब्राह्मण हैं। तुम्हारे द्वारा सम्मानित होकर, वे तुम्हारे प्रयोजन सिद्ध करेंगे — बशर्ते तुम उनके कार्यों को सहन करो। (स्कन्ध 6, अध्याय 7, श्लोक 25)



करुणामय ब्रह्मा देवों को उनके अभिमान के लिए भर्त्सना करते हैं और उन्हें त्वष्टा-पुत्र तपस्वी ऋषि विश्वरूप की शरण लेने का परामर्श देते हैं (श्लोक 21-25)।

देवगण विश्वरूप के पास जाते हैं

चिन्ता से मुक्त होकर, देवगण विश्वरूप के आश्रम में गए, उन्हें छोटे बन्धु के समान गले लगाया, और अपनी प्रार्थना रखी। हम अनपेक्षित अतिथि के रूप में आए हैं, उन्होंने कहा; प्रिय पुत्र, अपने चाचाओं की इच्छाएँ पूर्ण करने में प्रसन्न हो। तत्पश्चात् उन्होंने सम्बन्धों की पवित्रता पर एक स्मरणीय शिक्षा दी: माता-पिता की सेवा सन्तान वालों के लिए भी सर्वोच्च धर्म है, और ब्रह्मचारी के लिए तो और भी अधिक; आचार्य साक्षात्

वेद का स्वरूप है, पिता ब्रह्मा की मूर्ति, भ्राता इन्द्र की मूर्ति, माता साक्षात् पृथ्वी की तनु; बहन करुणा की मूर्ति, अनपेक्षित अतिथि साक्षात् धर्म, अभ्यागत अग्नि की मूर्ति, और समस्त प्राणी परमात्मा के स्वरूप (श्लोक 27-30)।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।

भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥ २९ ॥

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम् ।

अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३० ॥

ācāryo brahmaṇo mūrtiḥ pitā mūrtiḥ prajāpateḥ bhrātā marutpater mūrtir mātā sāṅśāt kṣites tanuḥ dayāyā bhaginī mūrtir dharmasyātmātithiḥ svayam agner abhyāgato mūrtiḥ sarva-bhūtāni cātmanah

अर्थ: आचार्य वेद का स्वरूप है, पिता ब्रह्मा का स्वरूप, भ्राता इन्द्र का स्वरूप, और माता साक्षात् पृथ्वी की मूर्ति है। बहन करुणा का स्वरूप है, अनपेक्षित अतिथि धर्म का स्वरूप, अभ्यागत अग्निदेव का स्वरूप, और समस्त प्राणी परमात्मा के स्वरूप हैं। (स्कन्ध 6, अध्याय 7, श्लोक 29-30)

अपने माता-पिता को, उन्होंने प्रार्थना की, शत्रुओं के हाथों पराजय की पीड़ा से मुक्त करो; और हम तुम्हें, ब्रह्म में स्थित ब्राह्मण को, अपना आचार्य चुनते हैं, जिससे तुम्हारी आध्यात्मिक महिमा से हम अपने शत्रुओं को जीत सकें। बुद्धिमान्, उन्होंने जोड़ा, धार्मिक प्रयोजन के लिए छोटे के चरणों में झुकने की निन्दा नहीं करते; वेद-ज्ञान के अतिरिक्त, केवल आयु वरिष्ठता का सच्चा मापदण्ड नहीं है (श्लोक 31-33)।

विश्वरूप पुरोहित-पद स्वीकार करते हैं

देवों द्वारा पुरोहित बनने की प्रार्थना पाकर, महान् तपस्वी विश्वरूप प्रसन्न हुए और कोमल स्वर में उत्तर दिया। पौरोहित्य, उन्होंने कहा, सज्जनों द्वारा निन्दित है क्योंकि यह ब्राह्मण की आध्यात्मिक महिमा को घटाता है; मुझ जैसा, जो शिल और उज्ज के पवित्र साधनों से जीवन-निर्वाह करता है, ऐसे निन्दनीय पद को कैसे स्वीकार करे? किन्तु वे अपने गुरुजनों की सादर प्रार्थना को अस्वीकार नहीं करेंगे; वे जो कुछ चाहते हैं वह सब वे पूर्ण करेंगे, उन्होंने प्रतिज्ञा की, अपने प्राण और अपने सर्वोच्च हित का बलिदान करके भी (श्लोक 34-37)।



देवों के पुरोहित रूप में, तपस्वी विश्वरूप, भगवान् विष्णु को अर्पित अपने स्तोत्र के द्वारा, असुरों के वैभव को छीनकर इन्द्र को लौटा देते हैं (श्लोक 38-40)।

प्रतिज्ञा करके, विश्वरूप ने परम तत्परता से पुरोहित का कार्य निभाया। भगवान् विष्णु को अर्पित एक स्तोत्र — नारायण-कवच — के द्वारा उन्होंने असुरों से वह वैभव छीन लिया जो उन्होंने शुक्राचार्य के संरक्षण में भी जीता था, और उसे इन्द्र को लौटा दिया। और उदार-हृदय ऋषि ने वही रक्षक स्तोत्र इन्द्र को सिखाया, जिसके द्वारा सुरक्षित होकर सहस्राक्ष देव असुर-सेनाओं को जीत सके (श्लोक 38-40)।

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ।

तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४० ॥

yayā guptaḥ sahasrākṣo jigye 'sura-camūr vibhuḥ tāṁ prāha sa mahendrāya viśvarūpa udāra-dhīḥ

अर्थ: जिस स्तोत्र से सुरक्षित होकर सहस्राक्ष महाबली इन्द्र ने असुरों की सेनाओं को जीता — वही स्तोत्र उदार-बुद्धि विश्वरूप ने महेन्द्र को प्रदान किया। (स्कन्ध 6, अध्याय 7, श्लोक 40)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. आध्यात्मिक गुरु के प्रति अभिमान पतन लाता है। स्वर्ग के राजा, अपनी महिमा के शिखर पर, अपने आचार्य का सम्मान न करने की एक चूक से सब कुछ खो देते हैं — एक चेतावनी कि कोई पद गुरु के अनादर को क्षम्य नहीं बनाता (श्लोक 7-9)।
2. पश्चात्ताप पुनरुद्धार का आरम्भ है। इन्द्र का तत्काल, निष्कपट आत्म-धिवक्ता दोष का सही उत्तर दिखाता है: छिपाव या बहाना नहीं, अपितु विनम्र स्वीकृति और सुधार का संकल्प (श्लोक 10-12, 15)।
3. प्रत्येक सम्बन्ध पवित्र है। विश्वरूप को दी गई देवों की शिक्षा आचार्य और माता-पिता, भ्राता और बहन, अतिथि और अभ्यागत, और समस्त प्राणियों में दिव्य उपस्थिति को प्रकट करती है — एक दृष्टि जो सामान्य कर्तव्य को उपासना में बदल देती है (श्लोक 29-30)।

4. बुद्धिमान् के लिए विनम्रता अपमान नहीं। आयु में छोटे होने पर भी विश्वरूप को सम्मान मिलता है, क्योंकि वैदिक ज्ञान में वरिष्ठता आयु से नहीं, ज्ञान से मापी जाती है (श्लोक 33); और यद्यपि पुरोहिती को ब्राह्मण की आध्यात्मिक निधि क्षीण करने वाला माना गया है, फिर भी वे अपने पालनकर्ताओं के लिए इसे बिना संकोच स्वीकार करते हैं — यह दिखाते हुए कि सच्ची महानता धार्मिक पुकार पर सहर्ष झुकती है (श्लोक 35-37)।

5. भगवान् का संरक्षण ही सच्चा कवच है। विश्वरूप की विजय शस्त्रों से नहीं, अपितु भगवान् विष्णु को अर्पित स्तोत्र से आती है, जो भक्त के वास्तविक कवच के रूप में नारायण-कवच की ओर संकेत करती है (श्लोक 38-40)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह चकित करने वाला है कि स्वर्ग के राजा का पतन किसी महान् अपराध पर नहीं, अपितु एक छोटी अशिष्टता पर टिका है — सिंहासन से उठने में चूक। किन्तु भागवत जानता है कि ऐसे क्षणों में कितना कुछ छिपा है। इन्द्र ने कुछ हिंसक नहीं किया; उन्होंने केवल अपनी महिमा को यह विश्वास दिला दिया कि सामान्य सम्मान उनसे नीचे है। और उसी क्षण वह आध्यात्मिक मार्गदर्शन, जिसने स्वर्ग की रक्षा की थी, मौन होकर लौट गया। कितनी बार हमारी अपनी विपत्तियाँ इसी प्रकार आरम्भ होती हैं — नाटकीय अपराध से नहीं, अपितु उनके प्रति कृतज्ञता के धीमे विस्मरण से जिन्होंने हमें सिखाया और सम्भाला है। इन्द्र को जो उद्धार देता है वह उनका पश्चात्ताप का शीघ्रता है; वही शक्ति जिसने उन्हें अभिमानी बनाया, उन्हें भरी सभा में खुले रूप से अपने को धिक्कारने से नहीं रोकती। और कथा जो उपचार देती है वह सुन्दर है: अपने जीवन के प्रत्येक व्यक्ति को — आचार्य, माता-पिता, भाई-बहन, अतिथि, यहाँ तक कि अनपेक्षित अजनबी को — दिव्य का स्वरूप देखना। उस दृष्टि से जीना सम्मान को हमारी स्वाभाविक वायु बना देता है, जिससे हमें उस कठोर पाठ की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती कि जिसका सम्मान न किया उसे खोना पड़े। अध्याय प्रतिशोध से नहीं, अपितु एक प्रार्थना से समाप्त होता है, हमें स्मरण कराते हुए कि हमारी सबसे निश्चित रक्षा कभी हमारी अपनी शक्ति नहीं, अपितु भगवान् की शरण है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, किसी गुरु का सम्मान करें। किसी को स्मरण करें जिसने आपका मार्गदर्शन किया हो — माता-पिता, कोई वरिष्ठ, कोई आध्यात्मिक गुरु, बचपन का कोई शिक्षक — और उन्हें, मन में या वाणी से, निष्कपट कृतज्ञता का एक शब्द अर्पित करें। यदि आपने अभिमान या विस्मरण से किसी का अपमान किया हो, तो इन्द्र के समान, उसे बिना विलम्ब सुधारने का संकल्प करें। दिन भर, अपने से मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को — परिवार के सदस्य, सहकर्मी, द्वार पर आए अजनबी को — भागवत की शिक्षा के अनुसार देखने का प्रयास करें: सम्मान के योग्य दिव्य का स्वरूप। सम्मान के इस सरल अभ्यास में आप वह विनम्रता निर्मित करते हैं जो आत्मा की रक्षा करती है।

उपसंहार

षष्ठ स्कन्ध का सातवाँ अध्याय दिखाता है कि किस प्रकार सम्मान की एक ही चूक स्वयं स्वर्ग के राजा को गिरा सकती है, और किस प्रकार विनम्रता और भक्ति उसे लौटा सकती है जिसे अभिमान ने खोया। इन्द्र का बृहस्पति के सम्मान में चूकना देवों को असुरों के समक्ष असहाय छोड़ देता है; किन्तु ब्रह्मा से मार्गदर्शित होकर, और समस्त पवित्र सम्बन्धों के प्रति गहन श्रद्धा से सज्जित होकर, वे तपस्वी विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाते हैं, और भगवान् विष्णु को अर्पित उनके स्तोत्र से उनका वैभव पुनः प्राप्त होता है। यह अध्याय सिखाता है कि कोई महिमा गुरु के प्रति

अभिमान को क्षम्य नहीं बनाती, कि पश्चात्ताप और विनम्रता वापसी का मार्ग खोलते हैं, और कि भगवान् का संरक्षण ही आत्मा का सच्चा कवच है। जैसे-जैसे यह स्कन्ध अगले अध्याय में स्वयं पवित्र नारायण-कवच की ओर मुड़ता है, हम यह पाठ साथ ले चलते हैं कि शक्ति नहीं, अपितु श्रद्धा ही प्रत्येक जीवन की रक्षक है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

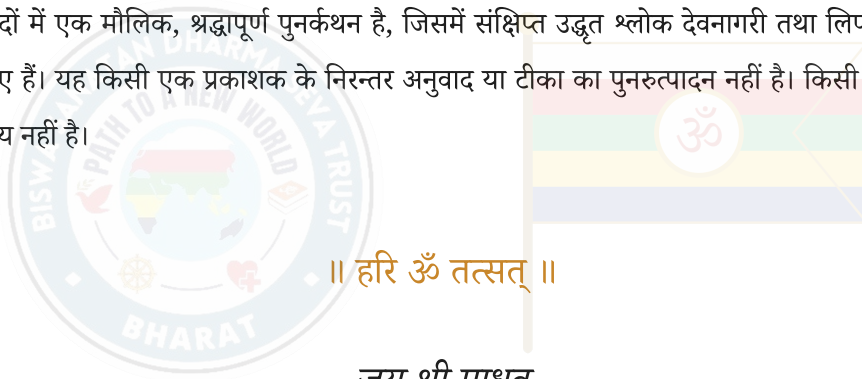
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ तथा साभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, सप्तम प्रवचन।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।



जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-6-chapter-7-indra-offends-brihaspati-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट